काठ का सपना

गजानन माधव मुक्तिबोध

काठ का सपना

भरी, धुआँती मैली आग जो मन में है और कभी-कभी सुनहली आँच भी देती है। पूरा शनिश्चरी रूप।

https://www.hindiadda.com/kath-ka-sapana/

वे एक बालिका के पिता हैं, और वह बालिका एक घर के बरामदे की गली में निकली मुँडेर पर बैठी है, अपने पिता को देखती हुई। उन्हें देख उसके दुबले पीले चेहरे पर मुस्कराहट खिलती है। और वह अपने दोनों हाथ आगे कर देती है जिससे कि उसके काका उसे अपने कंधों पर ले लें।

उसके पिता अपनी बालिकाओं को देख प्रसन्न नहीं होते हैं। विक्षुब्ध हो जाता है उनका मन। नन्हीं बालिका सरोज का पीला उतरा चेहरा, तन में फटा हुआ सिर्फ एक 'फ्राक' और उसके दुबले हाथ उन्हें बालिका के प्रति अपने कर्तव्य की याद दिलाते हैं; ऐसे कर्तव्य की जिसे वे पूरा नहीं कर सके, कर भी नहीं सकेगें, नहीं कर सकते थे। अपनी अक्षमता के बोध से ये चिढ़ जाते हैं। और वे उस नन्हीं बालिका को डाँट कर पूछते हैं, 'यहाँ क्यों बैठी है? अंदर क्यों नहीं जाती।'

बालिका सरोज, गंभीर, वृद्ध दार्शनिक-सी बैठी रहती है। अपने क्रोध पर पिता को लज्जा आती है। उनका मन गलने लगता है। उनके हृदय में बच्ची के प्रति प्यार उमड़ता है। वे उसे अपने कंधे पर ले लेते हैं। ऊँचे उठने का सुख अनुभव कर बच्ची मुस्करा उठती है।

पिता बच्ची को लिए घर में प्रवेश करते हैं तो एक ठंडा सूना, मटियाली बास-भरा अँधेरा प्रस्तुत होता है, पिछवाड़े के अंतिम छोर में आसमान की नीलाई का एक छोटा चौकोर टुकड़ा खड़ा हुआ है! वह दरवाजा है।

घर में कोई नहीं है।

सिर्फ दो साँसें हैं,

एक पिता की।

दूसरी पुत्री की।

वे एक अँधेरे कोने में बैठ जाते हैं और उनके घुटनों में वह बालिका है। उसका चेहरा पिता को दिखाई नहीं देता। फिर भी वह पूरा-का-पूरा महसूस होता है। वे चुपचाप उसके गाल पर हाथ फेरते जाते हैं और सोचते हैं कि वह लड़की मेरे समान ही धैर्यवान है, सब कुछ पहचानती है। बड़ी प्यारी लड़की है। उन्हें लगता है कि उनकी आँखे तर हो रही हैं।

एकाएक खयाल आता है कि अगर घर में बड़ा आईना होता तो अच्छा होता; अपनी बड़ी आँसू-भरी सूरत की बदसूरती देख लेते। उन्हें उमर रसीदा आदमियों का रोना अच्छा नहीं लगता।

सामने, अँधेरे में, रंग-बिरंगी पर धुँधली आकृतियाँ तैर जाती हैं। सुंदर चेहरेवाली एक लड़की है, वह उनकी सरोज है! नारंगी साड़ी है, सुनहली किनारी है सफेद ब्लाउज है! गले में हार है। हाथों में रंग-बिरंगी चूड़ियाँ हैं - एक-एक दर्जन! पति के घर से वापस लौटी है। खुश है, दामाद मैकेनिकल इंजीनियर है जिसकी गरीब सूरत है। और वह बाहर बरामदे में कुरसी पर बैठा है; क्या करे सूझता नहीं!

घर में उनकी स्त्री पूड़ी बना रही है। पकौड़ियाँ बन रही हैं। बहुत-बहुत-सी चीजें हैं। भाग-दौड़ है। हल्ला-गुल्ला है। शोर-शराबा है। लोग आ-आ कर बैठ रहे हैं - आ रहे हैं, जा रहे हैं। पास-पड़ोस की लुगाइयाँ चौके में मदद कर रही हैं। और उनके दिल में... क्या करें, क्या न करें, सब कुछ कर डालें! क्या ही अच्छा होता कि उनमें यह ताकत होती कि वे सबको प्रसन्न कर सकते और सारी दुनिया को खुश देख सकते। ...कि इतने में सपना टूट जाता है।

बरामदे का दरवाजा बज उठता है। पैरों की आवाज से साफ जाहिर होता है कि स्त्री, जो कहीं गई थी लौट आई है।

अंदर आ कर देखती है। उसे अचंभा होता है। 'यहाँ क्या कर रहे हो?'

उसकी आवाज गूँजती है। जैसे लोहे की साँकल बजती है। जैसे ईमान बजता है!

'सरोज कहाँ है?'

कोई आवाज नहीं! सरोज और उसके पिता स्तब्ध बैठे हैं।

पिता बोलते हैं मानो छाती के कफ को चीरती हुई घरघराती आवाज आ रही हो। कहते हैं, 'कहाँ गई थी? घर बड़ा सूना लग रहा था।'

स्त्री कोई जवाब नहीं दे कर वहाँ से चली जाती है। आँगन में पहुँच कर, जमीन में गड़ा हुआ एक पुराना पेड़, जो कट चुका है और जिसकी झिल्लियाँ बिखरी हैं, उस पर पैर रख कर खड़ी होती है। जमीन में उस कटे पेड़ में से जमीन की तहें छूते हुए नए अंकुर निकले हैं। बाद मे उन पर से उतर कर वह झिल्लियाँ बीनती है। पड़ोस से लाई हुई कुल्हाड़ी चला कर उन अधकटे ठूँठों से लकड़ी निकालने का खयाल आता है। लेकिन

काटने का जी नहीं होता। इसलिए झिल्लियाँ बीन कर वह उनका एक ढेर बना देती है और फिर आँगन की दीवार की मुँडेर पर चढ़ जाती है, क्योंकि उस मुँडेर के एक ओर नीम की एक सूखी डाल निकल आई है।

उसे वह तोड़ती है। ऊँची मुँडेर पर चढ़ कर नीम की सूखी डाल तोड़ लाने का जो साहस है, उस साहस से दीप्त हो कर वह प्रफुल्ल हो जाती है। सारी लकड़ी ठंडे चूल्हे के पास लाती है, जमा कर देती है।

सरोज पिता की गोद से उठ आई है। वह देखती है कि चूल्हे में सुनहली ज्वाला निकल रही है! वह देखती है, और देखती रह जाती है। उसे उस ज्वाला का रंग अच्छा लगता है। वह चूल्हे के पास जा कर बैठ गई है। उसकी रीढ़ की हड्डी दु:ख रही है, पर चूल्हे में जलती हई ज्वाला उसे अच्छी लग रही है।

सारा चौका सुहाना हो उठता है - भूरा-मटियाला, साफ-सुथरा! भीत की पटिया पर रखी पीतल की एक भगोनी, छोटे-छोटे दो गिलास और दो कटोरियाँ, कैसी चमचमा रही हैं, कितनी सुंदर! उन पर माँ का हाथ फिरा है। तभी तो... तभी तो...।

सुबह के पकाए भात में पानी डाला जाता है और नमक! चूल्हे पर चढ़ गया है भात! सुबह का बेसन भी है। उसमें पानी मिला दिया जाता है। उसे भी चूल्हे के दूसरे मुँह पर रख दिया गया है, सीझता रहेगा!

सरोज बोलती नहीं, माँ बोलती नहीं, पिता बोलते नहीं!

जब वह नन्ही बालिका भोजन कर चुकी तो उसकी जान में जान आई। बोरे पर बिछे, माँ के चिथड़े से बने, अपने मुलायम बिस्तर पर वह सो गई। पिताजी के बिस्तर से सटा हुआ उसका बिस्तर है! वे उसे अपने पास नहीं लेते। रात को वह बिस्तर गीला करती है, इसलिए!

दोनों तथाकथित बिस्तरों पर लेट गए हैं! दोनों को नींद नहीं! दोनों एक दूसरे से कुछ कहना चाहते हैं; कहना आवश्यक है। उस पूर्व-ज्ञान को वे कहना-सुनना नहीं चाहते। वह पूर्व-ज्ञान वेदनाकारक है, इसलिए उसे न कहना ही अच्छा! फिर भी न कहने से काम नहीं बनता, क्योंकि कह-सुन लेने से अपने-अपने निवेदनों पर सील लग जाती है, व्यक्तिगत मुहर लग जाती है। वह व्यक्तिगत मुहर अभी लगी नहीं हैं। हर एक उत्तर हर एक ज्ञान है। फिर भी बहुत कुछ अज्ञात छूट जाता है!

वे नहीं चाहते थे कि रात में नींद के पहले के ये कुछ क्षण खराब हो जाएँ, मन:स्थिति विकृत हो और दुर्दमनीय चिंता से ग्रस्त हो कर वे रात-भर जागते-कराहते रहें। नहीं, ऐसा नहीं! चिंता सुबह उठ कर करेंगे। रात है। यह रात अपनी है। कल की कल देखी जाएगी!

किंतु इन खयालों से माथे का दुखना नहीं थमता, देह की थकान दूर नहीं होती, असंतोष की आग और बेबसी का धुआँ दूर नहीं होता।

नहीं, उसका एक उपाय है! जबरदस्ती नींद लाने के लिए आप एक से सौ तक गिनते जाइए! इस तरह, आप कई बार गिनेंगे, दिमाग थक जाएगा और आप ही आप भीतर अँधेरा छा जाएगा। एक दूसरा तरीका है! रेखागणित की एक समस्या ले लीजिए। मन-ही-मन चित्र तैयार कीजिए। उसके कोणों को नाम दीजिए और आगे बढ़ते जाइए। अंत तक आने के पहले ही नींद घेर लेगी। एक और भी मार्ग है, जिसे इस लेख का लेखक अपनाया करता है! मस्तिष्क की सारी नसें ढीली कर दीजिए। आँखे मूँद कर पलकें बिलकुल बंद करके, सिर्फ अँधेरे को एकाग्र देखते रहिए। तरह-तरह की तसवीरें बनेंगी। पेड़दार रास्ते और उस पर चलती हुई भीड़ अथवा पहाड़ और नदियाँ जिनकों पार करती हुई रेलगाड़ी... भक-भक-भक ।

अँधेरा जड़ हो गया और छाती पर बैठ गया। नहीं, उसे हटाना पड़ेगा ही - सरोज के पिता सोच रहे हैं! और उनकी आँखे बगल में पड़े हुए बिस्तर की ओर गईं।

वहाँ हलचल है। वहाँ भी बेचैनी है। लेकिन कैसी?

...लेकिन उन दोनों में न स्वीकार है न अस्वीकार! सिर्फ एक संदेह है, यह संदेह साधार है कि इस निष्क्रियता में एक अलगाव है - एक भीतरी अलगाव है। अलगाव में विरोध है, विरोध में आलोचना है, आलोचना में करुणा है। आलोचना पूर्णत: स्वीकरणीय है, जिसे इस पुरुष ने कभी पूरा नहीं किया। वह पूरा नहीं कर सकता।

कर्तव्य कर्म को पूरा करना केवल उसके संकल्प-द्वारा ही नहीं हो सकता। उसके लिए और भी कुछ चाहिए! फिर भी, वह पुरुष मन-ही-मन यह वचन देता है, यह प्रतिज्ञा करता है कि कल जरूर वह कुछ-न-कुछ करेगा; विजयी हो कर लौटेगा।

पुरुष में भी आवेश नहीं है। वह भी ठंडा है, सिर्फ गरमी लाने की कोशिश कर रहा है।

वह उसकी बाँहों में थी। निश्चेष्ट शरीर! फिर भी, उसमें एक उष्मा है, जो मानो सौ नेत्रों से अपने पुरुष को देख रही हो, निर्णय प्रदान करने के लिए प्रमाण एकत्र कर रही हो। फिर भी निश्चेष्ट और सक्रिय!

पुरुष संवेदनाओं के जाल में खो गया। उसे स्त्री के होठ गुलाब की सूखी पंखुरियों-से लगे, जिससे उसे सूरज की गरमी की याद आई। उसके कपोल मिट्टी-से थे - भुसभुसी, नमकीन, शुष्क मृत्तिका! उसका हृदय एक अनजानी गूढ़ करुणा की सूचना से भर उठा। ...हाँ, उसका पेट, उसकी त्वचा में तो घरेलू बास थी। उसने उसे अपनी बाँहों में भर लिया और वह, मन-ही-मन, उस पूरी गरम चिलकती हुई पृथ्वी को याद करने लगा जिस पर वह बेसहारा मारा-मारा फिरता है। क्या यह पृथ्वी उतनी ही दु:खी रही है जितना कि वह स्वयं है!

एक उर्जा उठी और गिर गई। पुरुष निश्चेष्ट पड़ा रहा। मन जाग्रत था।

...दोनों स्त्री-पुरुष के जीवन पर विराम का पूर्ण चिह्न लग गया है, काठ हो गए हैं। बाढ़ आती है। किनारे पर पड़े हुए काठों को बहा कर ले जाती है। जल-विप्लव में। काठ बहते जाते हैं, फिर भी वे प्राणहीन काठ, आपस में गुँथे हुए बहे जा रहे हैं।

बादल-तूफान के कारण, पेड़ तिरछे हो रहे हैं। पर वे गुँथे-बँधे बहे जा रहे हैं, बहे जा रहे हैं... और, हाँ गुँथे-बँधे काठ खाली नहीं हैं। उन पर एक बालिका बैठी हुई है। हाँ, वह सरोज है। अपने नन्हे दो हाथ उसने दोनों के काठों पर टेक दिए हैं, जिनके सहारे वह स्वयं चली जा रही है।

सरोज की उस बाल मूर्ति की रक्षा करनी ही होगी! उन दो निष्प्राण काठ-लट्ठों का यही कर्तव्य है।

पुरुष इस स्वप्न को देखता ही रहता है। बारह का गजर होता है। रात और आगे बढ़ती है। सप्तर्षि, जो अब तक कोने में थे, सामने आ कर साफ दिखाई देते हैं।

https://www.hindiadda.com/kath-ka-sapana/